International Journal of Humanities and Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
ISSN: 2455-2070
Received: 11-10-2022; Accepted: 29-10-2022; Published: 14-11-2022
Volume 8, Issue 6, 2022, Page No. 59-61

भारतीय समाजिक धार्मिक सुधार आंदोलन के दौरान महिलाओं की स्थिति पर प्रभाव

गरिमा सिंह यादव
इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
इस आलेख में 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारत में हुए सामाजिक धार्मिक आंदोलन के कारण महिलाओं की स्थिति पर प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया का मुख्य आधार पुनर्जागरण था, जो कि तर्कवाद और नव चेतना पर आधारित था। सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलनों का केंद्र बिंदु महिलाएं थीं।इस लेख के माध्यम से सुधार आंदोलनों के कारणों तथा महिलाओं से जुड़ी सामाजिक कुरीतियों जैसे कि बाल विवाह, शिक्षा का अभाव, सती प्रथा, संपत्ति के अधिकारों में असमानता, बहुपत्नी प्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबंध आदि ,जो कि महिलाओं के दोयम दर्जे के लिए जिम्मेदार थे, पर प्रकाश डाला गया।समाज सुधार आंदोलनों की नींव पुरुष सुधारकों द्वारा डाली गई तथा इनकी शुरुआत महानगरों से हुई, जिसके परिणामस्वरूप महिला संगठनों और संस्थाओं का उदय हुआ जिन्होंने भविष्य में महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष किया।

मूल शब्दः पुनर्जागरण, उपनिवेश, बाल विवाह, बालिका शिशु हत्या, सती व्यवस्था इत्यादि

प्रस्तावना
19 वीं शताब्दी में भारत में एक नव चेतना का उदय हुआ जिसने,भारतीय समाज को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया।सुधारकों ने यह अनुभव किया की समाज सुधार से धार्मिक सुधार को अलग नहीं किया जा सकता। इन सामाजिक धार्मिक आंदोलनों का उद्देश्य सुधारवादी था, न कि क्रांतिकारी इस कारण इन्होंने धर्म को अस्वीकार करने की जगह धार्मिक आडंबरों पर चोट की। पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवी वर्ग ने इस सुधार आन्दोलन मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इन्हें भारत में 'राष्ट्रीय चेतना के पथ प्रदर्शक' तथा 'आधुनिक भारत का निर्माता' माना जाता है। इन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों को सार्वजनिक किया व उन्हें दूर करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। ये पश्चिमी मानवतावाद व तर्कवाद, राष्ट्रवाद, विज्ञानवाद से गहरे रूप से प्रभावित हुए एवं पाश्चात्य व भारतीय संस्कृति का अध्ययन कर इसकी त्रुटियों को ओर इंगित किया। राजा राममोहन रॉय, दयानंद सरस्वती, ईश्वर चंद विद्यासागर,ज्योतिबा फूले, गोपाल हरी देशमुख, के.टी. तेलंग,बी एम मालाबारी, डी.के. करवे,श्री नारायण गुरु, वी रामास्वामी नायकर प्रमुख सामाजिक सुधारक रहे। इसके अतिरिक्त कुछ प्रबुद्ध ब्रिटिश अफसरों ,ईसाई मिशनरियों ने भी सामाजिक बुराइयों को दूर करने में महत्वपूर्ण कदम उठाए।

सामाजिक धार्मिक आंदोलन के उदय के कारण
- उन्नीसवीं सदी में सामाजिक धार्मिक जागरण के अनेक कारण थे जैसे कि भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना, जिसने भारतीय समाज के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया व बौद्धिक विकास के लिए अनुकूल आधार प्रदान किया। हालांकि ये सामाजिक धार्मिक सुधार उपनिवेशी शासन की उपस्थिति में प्रारंभ हुए परंतु कहीं भी उपनिवेशी शासकों ने इसे प्रारंभ नहीं किया।
- दूसरा महत्वपूर्ण कारण था प्राच्यवादियो ने भारत के अतीत को वैभवशाली बताया,जिसमें प्रमुख थे सर विलियम जोन्स, जेम्स प्रिंसेप, चार्ल्स विल्किंस तथा मैक्स मूलर।
- ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा किया गया दुष्प्रचार। इनका मानना था कि भारत में ईसाई धर्म के प्रचार से ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की रक्षा होगी, भी एक मुख्य कारण बना सामाजिक धार्मिक आंदोलनों की शुरुआत।
- अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार तथा प्रेस के विकास ने भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसके कारण वैचारिक आदान प्रदान में गति आई व सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई।
- इस समय लोकतंत्र व राष्ट्रवाद की अवधारणा का विकास हुआ।

उन्नीसवीं सदी का भारतीय समाज अनेक सामाजिक कुरीतियों व अंधविश्वासों से घिरा हुआ था। इनमें से बहुत सी प्रथाएँ क्रूर व अमानवीय थे जैसे कि सती प्रथा, बाल विवाह ,बाल हत्या इत्यादि। समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत सोचनीय व दयनीय थी, उन्हें पुरुषों से कमतर समझा जाता था। हिंदू व मुस्लिम समाज दोनों में ही महिलाएं पुरुषों पर आश्रित थी तथा उन्हें शिक्षा ग्रहण करने की अनुमति नहीं थी। हिंदू स्त्रियों के पास संपत्ति का कोई अधिकार नहीं था तथा विवाह में उनकी सहमति नहीं ली जाती थी ,हालांकि मुस्लिम स्त्रियाँ इस मामले में बेहतर स्थिति में थी क्योंकि उनके पास संपत्ति का अधिकार था परंतु पुरुषों की बजाए उन्हें आधी संपत्ति दी जाती थी। हिंदू मुसलमान दोनों समुदायों में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी। मुख्यतः स्त्रियों को उपभोग की वस्तु माना जाता था जो कि इस अवधारणा पर आधारित था कि और की उनका जन्म पुरुषों की सेवा करने के लिए ही हुआ है, उनकी कोई पृथक पहचान नहीं थी। बुद्धिजीवी वर्ग ने समाज में प्रसारित किया कि किसी भी भी समाज का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे की है।धर्म उन दिनों जनता के जीवन का एक अभिन्न अंग था और धार्मिक सुधार के बगैर सामाजिक सुधार आसान नहीं था। बी.एन. लूनिया के अनुसार "भारतीय इतिहास की में 19 वीं सदी की विशेषता पुनर्जागरण है भारतीय पुनर्जागरण यूरोप के पुनर्जागरण से भिन्न था क्योंकि भारत में इसका उद्देश्य अतीत की ओर जाना नहीं था,बल्कि यह धर्म समाज तथा संस्कृति में तर्क आधारित परिवर्तनों के साथ साथ राष्ट्र के विकास पर आधारित था।"[7]

भारतीय समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति तथा उनकी भूमिकाओं का अवमूल्यन को समझने के लिए ऐतिहासिक परिपेक्ष्य को समझना अत्यंत आवश्यक है। महिलाओं को पितृसत्तात्मक घर

की चारदीवारी के अंदर कैद कर दिया गया,उन्हें पत्नी व माता के रूप में ही मान्यता दी गई । उनकी भूमिकाओं का निर्धारण भी पुरुषों द्वारा ही किया जाता रहा। वैदिक काल में महिलाओं को ऊंचा स्थान प्राप्त था। वह पुरुषों के साथ वैदिक कर्मकांडों में हिस्सा भी लेती थी और उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार भी प्राप्त है परंतु उत्तर वैदिक काल से महिलाओं की स्थिति में गिरावट आनी शुरू हुई, जिसकी पराकाष्ठा हमें मध्यकाल में देखने को मिलती है । मध्यकाल को महिलाओं की स्थिति के संदर्भ में काला युग कहा जाता है।

अंग्रेजों के भारत आगमन से भारतीय समाज में अत्यंत व्यापक परिवर्तन हुए, ये अपने साथ आधुनिक विचार, तकनीकी तथा बेहतर शिक्षा लेकर आए।भारतीय समाज का पश्चिमीकरण होने लगा जो कि समानता और स्वतंत्रता के विचारों से प्रेरित था। महिलाओं को भी समाज में महत्त्व मिलने लगा । समाज सुधारकों ने महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए कठिन संघर्ष किया तथा इसके खिलाफ़ कानून लागू करवाए। एम.एन.श्रीनिवास के अनुसार "ब्रिटिश शासन ने भारतीय समाज और संस्कृति में मौलिक तथा स्थायी परिवर्तन किये।"[6] कुछ कानून जिन्हें ब्रिटिश सरकार द्वारा पारित किया गया निम्नलिखित हैं–

- लॉर्ड वेलेजली द्वारा पारित शिशु हत्या पर पूर्ण प्रतिबंध 1802 रेग्युलेशन
- विलियम बैंटिक द्वारा 1829 में सती प्रथा उन्मूलन कानून
- लॉर्ड कैनिंग द्वारा विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856
- लॉर्ड नॉर्थब्रूक द्वारा नेटिव मैरिज ऐक्ट 1872
- लॉर्ड लैंसडाउन द्वारा एज ऑफ कॉन्सेंट एक्ट 1891
- लॉर्ड इर्विन द्वारा शारदा एक्ट 1930

उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलनों के आरंभिक चरण की नीव राजा राममोहन राय जैसे पुरुष सुधारकों द्वारा रखी गई ।ये पहले सुधारक थे, जिन्होंने सती प्रथा के खिलाफ़ आंदोलन चलाया। साथ ही ये प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने सामाजिक धार्मिक अमानवीय प्रथाओं को पहचाना और इनके खिलाफ़ संघर्ष की शुरूआत की। इन्हें नए भारत का पैगम्बर, नवजागरण का अग्रदूत, भारतीय पुनर्जागरण का पिता तथा भारत में समाज सुधार आंदोलन का मुख्य प्रवर्तक माना जाता है। 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की। इसका उद्देश्य महिलाओं के खिलाफ़ प्रतिबंधों तथा पूर्वाग्रहों को खत्म करना था जिसकी जड़ें धर्म से जुड़ी थी। राजा राममोहन रॉय ने अपने भाई की मृत्यु के पश्चात अपनी भाभी को कम उम्र में जलते देखा था।इस घटना ने इन पर गहरा प्रभाव डाला। इन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों का गहन अध्ययन किया तथा इनके संगठन ने महिलाओं हेतु शिक्षा,सती प्रथा की समाप्ति,सम्पत्ति में महिलाओं की हिस्सेदारी तथा विधवा पुनर्विवाह की वकालत की।शिक्षा को महिलाओं की स्थिति में सुधार का एक साधन माना। राजा राममोहन रॉय बहुविवाह के कट्टर विरोधी थे यह प्रथा उत्तर भारत एवं बंगाल में काफी प्रचलित थी ।ब्रह्म समाज ने अंतर्जातीय विवाह का भी समर्थन किया तथा ब्रह्म समाज ने अपनी देखरेख में अनेक विवाह भी संपन्न कराए जिसके कारण उन्हें हिंदू कट्टरपंथियों के विरोध से गुज़रना पड़ा। इनका विश्वास था कि शिक्षित महिलाएं ही परिवर्तन कि अग्रदूत है। ब्रह्म समाज ने महिलाओं की एक पत्रिका 'बोधिनी पत्रिका' निकाली।

प्रारंभ में ब्रिटिश संसद सती विरोधी कानून बनाने से बचती रही क्योंकि वे धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते थे। परन्तु सुधारकों के द्वारा किये जा रहे लगातार प्रयत्नो के कारण सरकार ने 1789 में इसकी जांच शुरू की और इसको बंगाल में गैरकानूनी घोषित किया हालांकि यह प्रथा भारत के अन्य भागों में प्रचलित रही।1815 से 1824 तक सती प्रथा के लगभग 6000 मामले ब्रिटिश भारत के तीन प्रेसीडेंसियों में रिपोर्ट किए गए,जिसमें 80ः मामले केवल बंगाल से थे। 1817 में पंडित मृत्युंजय विद्यालंकार ने घोषित किया कि सती की कोई शास्त्रीय मान्यता नहीं है। राजा राममोहन रॉय ने अपनी 'संवाद कौमुदीश पत्रिका में भी सती प्रथा का विरोध किया। अंततः 1829 में सती उन्मूलन कानून पारित कर दिया गया,जिसके तहत सती प्रथा को हत्या के बराबर अपराध घोषित किया गया और सती को प्रोत्साहित करने वालों पर फ़ौजदारी मुकदमा चलाने की घोषणा की गई। प्रारंभ में इसे केवल बंगाल में लागू किया गया तथा 1830 में इसे मद्रास व बॉम्बे प्रेसिडेंसी में भी लागू किया गया,इसमें तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेंटिक की प्रमुख भूमिका थी।जहाँ इस फैसले का सुधारकों ने स्वागत किया वहीं दूसरी ओर हिंदू रूढ़िवादियों ने इसका विरोध किया व सती प्रथा को धर्मशास्त्र सम्मत बताया,जिसमें राधाकांतदेव प्रमुख थे, इन्होंने सती प्रथा का समर्थन किया।

इन सुधार आंदोलनों के दौरान स्त्री शिक्षा भी एक अहम मुद्दा था। स्त्री शिक्षा का आरंभिक प्रयास 1819 में अंग्रेज और ईसाई मिशनरियों द्वारा किया गया,इन्होंने "कलकत्ता तरुण स्त्री सभा" की स्थापना की। जे.इ.डी.बेथुन द्वारा इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास किए गए तथा 1849 में बेथुन स्कूल की स्थापना की गई। जब अंग्रेज भारत आए तब शिक्षित महिलाओं का प्रतिशत बहुत कम था और केवल उच्चवर्गीय महिलाओं को ही शिक्षा दी जाती थी। महिला शिक्षा अनौपचारिक थी, शिक्षा केवल प्रसिद्ध परिवारों की महिलाओं को ही (क्लासिकल व वर्नाकुलर साहित्य की शिक्षा) दी जाती थी।महिला शिक्षा के विकास में ज्योतिबा फूले,सावित्रीबाई फूले, डी. के. करवे तथा ईश्वर चंद विद्यासागर का विशेष योगदान था। सावित्रीबाई फूले पहली महिला शिक्षिका थी, जिन्होंने 1848 में पुणे में भारत का पहला कन्या विद्यालय स्थापित किया। ज्योतिबा राव फुले तथा सावित्रीबाई फुले ने मिलकर भारत में साक्षरता मिशन 1854– 1855 शुरू किया,दोनों का यह मानना था कि शिक्षा के माध्यम से ही शोषित वर्ग तथा महिलाओं को सशक्त बनाया जा सकता है।हालांकि इन्हें राष्ट्रवादियों के विरोध का सामना करना पड़ा जिसका नेतृत्व बाल गंगाधर तिलक कर रहे थे। राष्ट्रवादियों का यह मानना था कि इससे राष्ट्रीयता को क्षति पहुंचेगी। पश्चिमी शिक्षा व्यवस्था से प्रभावित होकर 1816 में कलकत्ता में हिंदू कॉलेज की स्थापना की गई। ईश्वर चंद विद्यासागर, ज्योतिबा फुले तथा गोपाल हरी देशमुख आदि सुधारकों ने महिलाओं की शोषित स्थिति व दमन के लिए जाति प्रथा को उत्तरदायी माना। ज्योतिबा फुले के अनुसार "महिलाओं तथा शूद्र को शिक्षा की अनुमति नहीं दी गई ,ताकि वे समानता और स्वतंत्रता के महत्त्व को समझ न सके तथा परंपराओं रीति रिवाजों की बेड़ियों में स्वयं की स्थिति को स्वीकार कर लें और इसमें बंधे रहे।" महादेव गोविंद रानाडे तथा आरजी भंडारकर अन्य महत्वपूर्ण समाज सुधारक, जिन्होंने 1867 में प्रार्थना समाज की स्थापना की थी। इस समाज ने महिलाओं की शिक्षा पर बल दिया जिसका मुख्य उद्देश्य परिवार के अंतर्गत महिलाओं की स्थिति परिवर्तन लाना था तथा उन्हें एक अच्छी पत्नी और माँ बनने के लिए प्रेरित करना था।महिला शिक्षा के लिए न केवल समाज सुधारकों ने बल्कि ब्रिटिश सरकार ने भी इस दिशा में अहम योगदान दिया जैसे कि 1854 के 'वुड डिसपैच', इसमें पहली बार स्त्री शिक्षा का प्रावधान किया गया।इसके अतिरिक्त 'हंटर कमीशन' तथा 'सैडलर कमीशन' में भी स्त्री शिक्षा के लिए प्रावधान किया गया। पहला महिला विश्वविद्यालय बॉम्बे में डी. के. करवे के प्रयत्नो से स्थापित किया गया था।

महिलाओं से संबंधित एक महत्वपूर्ण मुद्दा विधवा पुनर्विवाह भी था, जिसे समाज सुधारकों द्वारा उठाया गया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर का इसमें अहम योगदान था, इन्होंने विधवा पुनर्विवाह को शास्त्र सम्मत बताया तथा गवर्नर जनरल को 1855 में इसके लिए

कानून बनाने हेतु याचिका सौंपी,जिस पर आधारित मसौदा विधान परिषद में जे.पी.ग्रांट द्वारा पेश किया गया। विष्णु शास्त्री पंडित द्वारा महाराष्ट्र में 1850 में विधवा पुनर्विवाह एसोसिएशन की स्थापना की गई तथा डी.के. करवे ने विधवा महिलाओ के लिए पुणे में विधवा आश्रम की स्थापना की और उन्होंने स्वयं एक विधवा महिला से विवाह किया तथा समाज के सामने एक उदाहरण पेश किया। 1856 में विधवा पुनर्विवाह के लिए कानून बना, जिसके तहत विधवा विवाह तथा उससे उत्पन्न बच्चे वैध घोषित किए गए। 7 दिसंबर 1856 को भारत का पहला कानूनी विधवा पुनर्विवाह कलकत्ता में हुआ, परंतु विडंबना यह रही की इसके परिणामस्वरूप बहुत कम पुनर्विवाह हुए, जिसके कारण इसे सुधारकों ने 'मुर्दा पत्र' की संज्ञा दी। 1869 में बॉम्बे विडो रिफॉर्म असोसिएशन की स्थापना की गई और 1869 में ही पहला विधवा पुनर्विवाह करवाया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर, विष्णु शास्त्री पंडित, करसोनदास मूलजी के अतिरिक्त जगन्नाथ सेठ, मद्रास के वीरेशलिंगम पंतुलु के साथ ही बी. एम. मालाबारी, महादेव गोविंद रानाडे आदि ने विधवा पुनर्विवाह के संदर्भ में सराहनीय योगदान दिया। करसोनदास मुलजी गुजरात में सत्यप्रकाश की स्थापना करके इस दिशा में अपना योगदान दिया।

इसके अतिरिक्त समाज सुधार आन्दोलन में बाल विवाह महिलाओं से संबंधित एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या थी। सदियों से बाल विवाह प्रथा हिंदू समाज का हिस्सा थी।1860 में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक कानून पारित किया गया जिसके अंतर्गत 10 वर्ष से कम आयु की बालिका के साथ संबंध बलात्कार माना गया, परन्तु यह कानून बालिकाओं को सुरक्षा प्रदान करने में असमर्थ रहा। विवाह की उम्र बढ़ाने के लिए बेहरामजी मालाबारी से पूर्व जो भी प्रयास किए गए वह असफल रहे क्योंकि ज्यादातर दलीलों को सामाजिक व नैतिक आधार पर ठुकरा दिया जाता था।इस आंदोलन में महिलाओं के शामिल होने से यह मुद्दा और गर्मा गया। कलकत्ता की महिला चिकित्सकों ने समाज सुधारकों द्वारा विवाह की उम्र बढ़ाने के लिए दिए जा रहे तर्कों का समर्थन किया और 1600 महिलाओं ने महारानी विक्टोरिया के समक्ष 1890 में कानूनी सुधार के लिए याचिका प्रस्तुत की। केशवचंद्र सेन के प्रयासो से लॉर्ड नॉर्थबुक द्वारा 1872 में नेटिव मैरिज एक्ट पास किया गया जिसके तहत लड़कियों की विवाह की न्यूनतम आयु 14 वर्ष घोषित की गई । आगे चलकर इसी दिशा में बी. एम. मालाबारी के प्रयत्नो से लॉर्ड लैंसडाउन द्वारा 1891 में सम्मति आयु अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत लड़कियों के विवाह की न्यूनतम आयु 12 वर्ष की गई। डॉक्टर हरविलास शारदा का बाल विवाह रोकने में अहम योगदान था और इनके आंदोलन के कारण शारदा अधिनियम पारित हुआ जिसमे लड़कों की न्यूनतम आयु 18 वर्ष व लड़कियों की न्यूनतम आयु 14 वर्ष का प्रावधान किया गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक समाज सुधार आंदोलनों का प्रभाव परिलक्षित होने लगा। हालांकि रामाबाई के समान व्यक्तिगत विद्रोह कम ही देखने को मिलते हैं परंतु सार्वजनिक जीवन में महिला अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाली स्त्रियों की संख्या में वृद्धि हुई।इसमें एक उल्लेखनीय नाम ताराबाई शिंदे का लिया जाता है जिन्होंने अपनी पुस्तक 'स्त्री पुरुष तुलना' (1882 में रचित) में ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक व्यवस्था की आलोचना की है ।

निष्कर्ष

इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक धार्मिक सुधार आंदलोन ने भारत में शोषित महिलाओं को उनकी आवाज दी जिससे कि वो अपने अधिकारों के लिए लड़ सकें।सामाजिक धार्मिक आंदोलनों ने भारत में सामाजिक न्याय को स्थापित करने तथा सामाजिक बुराइयों पर अंकुश लगाने का कार्य किया।महिला शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक कदम उठाए। इन आंदोलनों के दबाव के कारण ब्रिटिश साम्राज्य में सती, विधवा पुनर्विवाह व विवाह की न्यूनतम उम्र निर्धारण आदि से संबंधित कानून निर्मित किए गए। हालांकि सामाजिक सुधार आंदोलनों के द्वारा महिलाओं की स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया गया परन्तु उनकी लैंगिक भूमिका में परिवर्तन के विषय में नहीं सोचा गया।

संदर्भ सूची

1. सरकार, सुमित, 1984 – आधुनिक भारत, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड
2. राधा कुमार,स्त्री संघर्ष का इतिहास 1800 से 1900, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,2002, पृष्ठ संख्या 26–27
3. मजुमदार, बी.बी.,1998– भारत में आतंकवादी राष्ट्रवाद और उसके सामाजिक धार्मिक पृष्ठभूमि
4. सुमित सरकार,तनिका सरकार (एडिटर्स) –विमेन एंड सोशल रिफॉर्म इन मॉडर्न इंडियाः ए रीडर, इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस, 2011
5. लुनीया बी.एन.,भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा,1998, पृष्ठ 46
6. भारद्वाज, दिनेश चन्द्र, ऐतिहासिक निबंध (भारतीय पुनर्जागरण और पाश्चात्य प्रभाव), लखनऊ, 1984, पृष्ठ 223
7. चक्रवर्ती, उमा –जेंडरिंग कास्ट थ्रू ए फेमिनिस्ट लेंस,पॉपुलर प्रकाशन ,2011
8. विपिन चन्द्रः आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्रा. लिमिटेड,2008